राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हों शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाए तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

वर्ष 66 जनवरी-मार्च 2018 अंक 1

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक **पृष्ठ**

1. भजन---------- 01

गुरु अर्जुन देव

2. श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या---------- 02

लालाजी महाराज

3. आत्मा के उद्धार का सुगम साधन–सत्संग ---------- 09

डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

4. उपदेश---------- 13

अनमोल वचन

5. आन्तरिक शान्ति के लिये द्वन्दों को समाप्त करना होगा ---- 17

परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

8. मलिक दिनार दमस्की---------- 24

9. ध्यान का विज्ञान---------- 30

बधाई-सन्देश

आप सभी भाई-बहनों को नववर्ष 2018 की बहुत-बहुत बधाई। ईश्वर से प्रार्थना है कि आप सपरिवार सुखी, स्वस्थ और संतष्ट रहें और ईश्वर प्रेम में बढ़ते उत्साह और आनन्द से दिनोंदिन प्रगति करते रहें।

आपने जो इस अवसर पर मेरे और मेरे परिवार के प्रति शुभकामनायें व्यक्त की हैं, उनके प्रति हम अति आभारी हैं तथा सभी को सप्रेम धन्यवाद देते हैं।

– शक्ति कुमार सक्सेना

राम ॐ संदेश

संस्थापक
ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
संरक्षक
ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी
सम्पादक
डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना
(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 66 जनवरी–मार्च 2018 अंक–1

भजन

हमरी बेदन हर प्रभ जानै,
मेरे मन अंतर की पीर।
हरि दरसन को मेरा मन बहु रोये तड़पे,
ज्यों त्रिखाबन्त बिन कीर।
मेरे हाल प्रीतम की कोई बात सुनावै,
सो भाई सो मेरा वीर।
मिल–मिल सखी गुन कहो मेरे प्रभ के,
ले सतगुरु की मतधीर।
जन 'नानक' की हर आस पुजाओ,
हर दरसन साथ सरीर।

–गुरु अर्जुन देव

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या

(पिछले अंक से आगे)

94

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धिराजसम् ।।17।12।

अर्थः– परन्तु हे अर्जुन केवल दम्भाचरण के लिए या फल को भी सामने रखकर जो यज्ञ किया जाता है उसको राजसी जानो।

भावार्थः– कोई भी यज्ञ (भजन पूजन) दो बातों के लिए किया जाता है वे हैं दम्भाचरण यानी मैं सर्वशक्तिमान बन जाऊँ या मुझमें अमुक योग्यता आ जाये आदि। या फिर किसी फल (निमित्त) अर्थात् बदले में कुछ और आशा करें तो वो राजसी पूजन और कर्म होंगे।

95

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।17।13।

अर्थः– (शास्त्रोक्त) विधिहीन, अन्नदान के बिना, मंत्रों के बिना, दक्षिणा के बिना और बग़ैर श्रद्धा के यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

भावार्थः– शास्त्रोक्त विधि से किये गये और बगैर इच्छा के यज्ञ को सात्विक, अपनी इच्छापूर्ति या शक्ति आदि अर्जित करने के लिए किये गये राजसी और वे यज्ञ जिनमें न विधि विधान है, न दान, दक्षिणा न मंत्रों का उपयोग है वे तामसी यज्ञ कहलाते हैं।

96

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृत ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।17।23।

अर्थः– ॐ तत् सत् ऐसे त्रिविध प्रकार का ब्रह्म का नाम है। उसी से आदि काल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये।

भावार्थः– भगवान ने जप के लिए महामंत्र ''ॐ तत् सत्'' दिया। इसका तात्पर्य है कि परम ब्रह्म एकाक्षर ॐ (वो ही सत्) सब जगह विस्तारित है। इस मंत्र को श्वास में (ॐ) और प्रश्वास में (तत् सत्) कहकर द्विमुखी, नामी से ॐ कहकर उठाकर 'तत्' सीधे कंधे पर और सत् दिल पर कहकर सांस फेंकने पर त्रिमुखी, ॐ को सीधे पैर में और तत् सत् को बायें में कहकर चलते समय का, और लगातार जाप (एक मुखी) भाव के साथ करने से उच्चतम फल मिलता है। इन्हीं ॐ तत् सत् से सारे संसार, वेद, यज्ञ, ज्ञान रचे गये।

97

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशय ।।18।10।

अर्थः– जो अकुशल कर्म से द्वेष नहीं करता और कुशल कर्म में आसक्ति नहीं रखता वही सतोगुणी, संशयरहित बुद्धिमान और सच्चा त्यागी है।

भावार्थः– त्याग वास्तव में क्या है, इसका अति सुन्दर और गूढ़ भेद भगवान ने यहाँ बताया है। उचित कर्म को मोह रूप से त्याग करना या दुःख भरा परिणाम समझकर त्याग करना तामसी और राजसी त्याग कहलायेंगे। वे ही अकुशल कर्म कहलायेंगे उनसे द्वेष नहीं रखना चाहिये (द्वेष या घृणा हो ही नहीं) वाला भाव न रखें क्योंकि वो (अकुशल कर्म) भी तो होना है। कुशल कर्म फल त्याग करके किया जाता है वही सतोगुणी त्याग होगा। ऐसा करने वाला सच्चा त्यागी होगा।

98

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ।। 18।23।

अर्थः– जो कर्म शास्त्र विधि से, आसक्ति रहित, फल न चाहने वाले व्यक्ति द्वारा बगैर राग द्वेष के किया जाये वह सात्विक है।

भावार्थः– भगवान यहाँ सात्विक कर्म की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि आसक्ति रहित, फल की इच्छा रहित, शास्त्रविधि से किये कर्म सात्विक

हैं। किन्तु वहाँ यज्ञ, पूजन की व्याख्या की है अतः वहाँ मन को समाहित करने को शामिल किया है।

99

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियोः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः साःपार्थ सात्त्विकी ।।18।33।

अर्थः– हे पार्थ! जिस अव्यभिचारिणी वृत्ति से योग द्वारा मन, प्राण, इन्द्रियों की क्रिणाओं से ग्रहण करता है वह सात्विकी बुद्धि है।

भावार्थः– भगवत् निमित्त किस प्रकार की क्रियाऐं सात्विक बुद्धि वाली होंगी की यहाँ व्याख्या की है, और अव्यभिचारिणी वृत्ति पर बल दिया है कि एक निष्ठ गुरु, ढंग, क्रिया, धर्म, माध्यम से योग बुद्धि द्वारा किया प्रयत्न, अभ्यास सात्विकी होगा। योग बुद्धि में मन, प्राण और इन्द्रियों का निग्रह स्वयं शामिल है।

100

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ।।18।37।

अर्थः– जो प्रारम्भ में विष के समान लगे किन्तु परिणाम जिसका अमृत तुल्य है ऐसा (वह) आत्म, बुद्धि जनित सुख सात्विक सुख है।

भावार्थः– सात्विक सुख की परिभाषा कितनी सत्य यहाँ बताई है कि जो प्रारम्भ में विष के समान किन्तु अंत में अमृततुल्य है। सत् (आत्मा की उन्नति) का (परमार्थ) मार्ग वास्तव में ऐसा ही है जो प्रारम्भ में सकरा, कष्टदाई है परन्तु अंत में अति सुखदाई है। इसीलिए धमार्थ लगा व्यक्ति दुखी और क्रूर, दुष्ट, दुष्कर्मी फलते–फूलते दिखते हैं परन्तु अंतिम निर्णय अर्थात् अंत ही बता पायेगा कि कौन ठीक है।

101

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।18।42।

अर्थः– शम, दम, तप, शौच, शान्ति, आर्जवम, आस्तिक ज्ञान व विज्ञान, ब्रह्म कर्म के स्वभाव हैं।

भावार्थः– महर्षि पातंजलि के योग के आठ अंगों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, प्रत्याहार, समाधि) में से यम, नियम के मुख्य आठ ब्राह्मण (ब्रह्म की प्राप्ति में तत्पर) नित्य कर्म लक्षण बताये हैं। वे हैं शम (अंतःकरण की शान्ति), दम (इन्द्रियों का दमन), तप (पूजा क्रिया), शौच (शारीरिक शुद्धता), शान्ति (दूसरों के अपराध क्षमा कर देना), आर्जवम (मन आदि को सरल नहीं रखना), आस्तिक ज्ञान (श्रद्धा पूर्वक ज्ञान), विज्ञान (तत्व की खोज)।

102

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुनिष्ठतात् ।
स्वभाववनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।18।47।

अर्थः– दूसरे के प्रतिष्ठित धर्म से अपना गुण रहित धर्म भी श्रेष्ठ है क्योंकि स्वभावपूर्वक (अपने धर्मानुसार) कर्म करता हुआ पाप को प्राप्त नहीं होता।

भावार्थः– दूसरे के पूर्ण विख्यात प्रतिष्ठित धर्म को देखकर अपना धर्म, भले ही उतना गुणकारी न हो तो भी स्वधर्म को हीन न समझें। यहाँ फिर अव्यभिचारिणी भक्ति की ओर इशारा है कि धर्म न बदलें भले ही अपना धर्म उतना गुणकारी न हो। दूसरी व्याख्या यहां पाप की है। जिस कर्म को करने में ग्लानि हो वही पाप कर्म है। अपने धर्मानुसार चलने में ग्लानि न लायें तो पाप लगेगा ही नहीं। तीसरी बात ये भी है कि हर धर्म प्रभु की ओर ही ले जायेगा इसलिए बदले नहीं। अतः यहां तीन बातें मुख्य रूप से कही गई हैं। अव्यभिचारिणी भक्ति, पाप और हर धर्म की गुणवत्ता।

103

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।। ।।18।48।

अर्थः– हे कोन्तेय पुत्र! दोष युक्त होने पर भी सहज कर्म को नहीं त्यागना चाहिए क्योंकि धुऐं से अग्नि की भाँति सर्वकर्म दोष से युक्त हैं।

भावार्थः– प्रभु ने जैसे अन्य स्थानों पर कहा है कि मेरे सिवाय दूसरा कोई परमात्मा नहीं है और मुझसे अन्य कोई ऐसी वस्तु या विचार नहीं है जिसमें माया का प्रभाव न हो। इसी प्रकार यहां कहा है कि हर कर्म में दोष है जैसे अग्नि में धुआँ है। दोष को प्रभु माया कहते हैं। अतः सहज कर्म (शास्त्रोक्त) उचित सात्विक, शुरु में गलत भले ही लगे परन्तु अंत अमृत तुल्य है। ऐसे कर्मों को त्यागना नहीं चाहिए। यानी अवश्य करें।

104

मच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारात्र श्रोष्यसि विनंकष्यसि ।।18।58।

अर्थः– मुझमें चित्त वाला होकर तुम मेरी कृपा से सब दुर्गम (संकटों) से पार हो जाओगे और यदि अहंकार वश नहीं सुनोगे तो नाश को प्राप्त होगे।

भावार्थः– यहां प्रभु का संक्षेप में संदेश है, कोई धमकी नहीं है कि सारे संकट, आत्मिक, मानसिक, शारीरिक (आध्यात्मिक, अधिदैविक और आधिभौतिक) टल जायेंगे यदि मेरे में चित्त को लगाया तो! अन्यथा नाश को प्राप्त होगे यानी कहीं के भी नहीं रहोगे, ऐसी दुर्गति होगी।

105

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोपि तत् ।।18।60।

अर्थः– हे कुन्ती पुत्र! जिस (कर्म को) तुम मोहवश करना नहीं चाहते उसे स्वभाववश कर्म में बंधे होकर (तुम) मजबूरन करोगे।

भावार्थः– यह हम सबकी आदत (मन की मजबूरी) वाली अवस्था का उत्तम द्योतक है कि मोहवश भले ही हम सोचें कि इसे हम नहीं करेंगे किन्तु अंत में आदतन (कम्पलसिव ऐटीट्यूड) की वजह से मन न होने पर भी कर डालते हैं। यहां अगर ध्यान से देखें तो भगवान ने उस भविष्यवाणी को कर दिया है कि यदि तुम युद्ध नहीं करना चाहो तो न करो परन्तु मजबूरन हो सकता है शत्रु उकसायें या कोई बातें (अत्याचार अपने साथ) याद आ जाये तो तुम युद्ध अवश्य कर ही डालोगे।

106

मन्मया भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।18।65।

अर्थः– (अतः) मुझमें मन वाले, मेरे भक्त बनो, मेरा पूजन करो, मुझको प्रणाम करो। ऐसा करने से मुझको ही प्राप्त होगे। यह मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तुम मुझे प्रिय हो।

भावार्थः– यहाँ फिर भगवान ने साफ कर दिया है कि मुझमें ही मन को लगाओ, मेरा पूजन करो, मुझे प्रणाम करो। तब अवश्य ही मुझको प्राप्त होगे क्योंकि तुम मुझे प्रिय हो, अतः यह मेरी प्रतिज्ञा (वचन) है। सारे अवतार पंथ स्थापित कर्ता केवल यही कहते हैं कि भगवान के वे पुत्र हैं, उनके भेजे व्यक्ति हैं आदि। केवल कृष्ण ठोस शब्दों में कहते हैं कि मैं ही वो हूँ जो परम पिता के नाम से जाना जाता है, अतः मुझे ही पूजो। दसवें अध्याय की विभूतियाँ और ग्यारहवें अध्याय का दर्शन इस बात का प्रमाण है। अतः हमको भी उनका प्रिय बनना चाहिए तभी उनका पूजन, प्रणाम, मन लगाना फलेगा। केवल यही कर्मो के फलों के बनने से मुक्ति दिलाने वाला है।

107

सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्ष्ययियामि मा शुचः ।।18।66।

अर्थः– सब धर्मो को त्यागकर एक मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा। तुम अन्य बातों का शोक मत करो।

भावार्थः– श्लोक (18–47) में भगवान ने कहा था कि यदि दूसरे का धर्म प्रतिष्ठित हो तो भी अपना धर्म न छोड़ें। यहाँ वे कहते हैं कि सब धर्मो को त्यागकर मेरी शरण में आ जाओ। यहाँ धर्म का तात्पर्य पंथ, मत या सामाजिक बंधन को त्यागना नहीं है, उसके लिए तो यही नियम है कि गुणकारी न हो तो भी न त्यागो। परन्तु मन के बखेड़ो, उलझनों, विभिन्न मान्यताओं कि कौन सी ठीक है, कौन सी नहीं आदि को भगवान यहां धर्म

कह रहे हैं। वे कहते हैं उन्हें त्यागकर केवल मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूंगा। फिर कोई चिंता की बात ही नहीं रहेगी। इसका तात्पर्य ये भी है कि अपने ही पंथ में मत में या सामाजिक संस्था में चलते हुए केवल मेरी शरण वाली याद और शामिल कर लो, सारे बाकी काम भगवान कर देंगे। समर्थ गुरु भी श्री कृष्ण की तरह ही कहते हैं कि केवल उनकी शरण वाले भाव ही अपने अंदर और ले आओ बाकी काम वे स्वयं कर देंगे।

108

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।। 18 ।78 ।।

अर्थः– जहां योगेश्वर भगवान कृष्ण हैं और जहां धनुर्धर अर्जुन हैं वही पर श्री विजय, विभूति और अचल नीति है। ऐसा मेरा मत है।

भावार्थः– जहां परमेश्वर, योगेश्वर एवं समर्थ गुरु भगवान कृष्ण (परमात्मा स्वरूपी) स्वयं हैं और उच्च कोटि के विवेकपूर्ण, आज्ञाकारी शिष्य अर्जुन हैं वहीं सर्वोच्च योग विद्या का उच्च फल प्राप्त होगा जो श्री (लक्ष्मी सम्पन्नता), विजय, विभूति और प्रभु की नीति (जो अचल है) प्राप्त होगी। ऐसा भगवान का आशीष है।

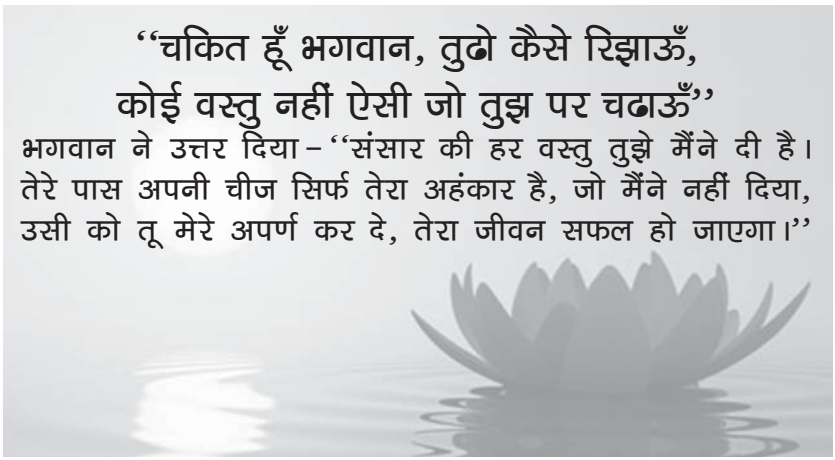

प्रवचन गुरुदेवः डा.श्रीकृष्ण लालजी महाराज

आत्मा के उद्धार का सुगम साधन – सत्संग

जो आदमी परमात्मा की तरफ ध्यान लगाये हुए है, उससे मिलकर दूसरा आदमी भी उतना ही ताकतवर हो जाता है और ऐसे चमकने लगता है जैसे असली सूरज चमक रहा हो। अगर हमारा ताल्लुक असल भंडार (परमात्मा) से हो जाय तो हम बहुत शक्तिशाली हो जायेगें। जो शक्ति से अपना ताल्लुक पैदा कर लेता है वह गुरु है। जिन लोगों का विश्वास ईश्वर पर है वे सत्संगी हैं। वे ही इस सत्संग में बैठने के अधिकारी हैं। जो आदमी मन और माया के साथ है उसको सत्संग में बैठाने से नुकसान होता है। साधन मन का है। आत्मा एक है और सब जगह वही काम कर रही है। एक सूरज है लेकिन उसकी रोशनी सब पर पड़ती है। सत्संग के हल्के (दायरे) में एक के चरित्र का दूसरे पर असर पड़ता है। हल्का ऐसी जगह बांधते हैं जो स्थान सबसे अन्दर हो, जहां शोर न हो। फिर उन लोगों को बैठने की इजाजत देते हैं जो परमात्मा को मानते हैं और समान विचारधारा के हैं। इसको हजूरी कहते हैं। हजूरी का मतलब है कि हम सब परमात्मा को सब जगह देख रहे हैं। गुरु अपनी शक्ति से सबको हल्के के अन्दर बांधे रहता है। मानीटर्स (शिक्षक) मदद करते हैं। सूफियों में कहीं–कहीं तो नंगी तलवार लेकर पहरे पर खड़ा कर देते हैं कि कोई गैर हल्के में न आने पावे। मानीटर्स का काम है कि सबकी खांसी, खकार, खुजली आदि अपने ख़्याल से रोक दें। सब लोग अपने ख़्याल को गुरु में लगाते हैं और गुरु अपने आप को परमात्मा में। इस तरह ब्लिस यानी परमात्मा का प्रेम गुरु अपने गुरु यानी परमात्मा में लय होकर नीचे की ओर फेंकता है। अभ्यासी सत्संग में ध्यान करते हैं और अपने मन की हालत को देखते हैं। देखते हैं कि गुरु की तरफ से प्रकाश आ रहा है। इससे दुगना फायदा होता है। यह सत्संग है। अगर किसी को बाहरी ख़्यालात सताने लगें और

ध्यान न जमता हो तो उसको उठकर हलके से बाहर चले जाना चाहिये वर्ना विपरीत विचारों के टकराने से सबका नुकसान होता है। इसको इस तरह और साफ समझ लीजिये। जो लोग हल्के में बैठकर अपनी सुरत को ऊपर चढ़ा रहे हैं उनकी चाल ऊपर को (ऊर्ध्वमुखी) है और वहीं उसी हल्के में बैठे विपरीत विचारों के लोग सांसारिक विचारों में तल्लीन हैं जिनकी चाल नीचे को (अधोमुखी) है। इसका मतलब है कि दो विचारधारायें विपरीत दिशाओं में चल रहीं हैं। इससे हानि होती है। गुरु ऊपर से फैज़ (ईश्वर की कृपा की धार को) लाकर आपके ऊपर व आपके दिल में उड़ेलते हैं। अभ्यास में यह फैज गुरु की मार्फत लिया जाता है। भक्त अपनी शक्ति गुरु में अनुभव करता है इसलिए भक्त में अभिमान नहीं होता। भक्त चाहे परमात्मा बन जाये गुरु को नहीं छोड़ता। वह 'मैं' पने के फेर में नहीं पड़ता। जो 'मैं' पने में रहता है वह मन का गुलाम है। मन को साधना मुश्किल है। औरों को यौगिक क्रियाएँ करनी होती हैं, सात परदे चीर कर आत्मा के नजदीक आना होता है। लेकिन भक्तों को सिर्फ दो परदे चीरने होते हैं, एक मन का दूसरा आत्मा का। गुरु में देह व आत्मा है। प्रकाश आवेगा तो देह का ध्यान जाता रहेगा। सच्चे गुरु मुख भक्त को परदे भी नहीं चीरने पड़ते। अगर उसका पूरा विश्वास अपने गुरु में है तो गुरु ६ महिने ही में ईश्वर दर्शन करा देंगे। बाकी उम्र में पुख़्तगी व सैर होती है। गुरु फिदाई (शिष्य को प्रेम करने वाला) हो और मुरीद शैदाई (गुरु पर मर मिटने वाला) हो। मुर्दे और मुरीद में सिवाय जान के और कोई फक्र नहीं होता। जो मुरीद अपने को गुरु के हाथों पूर्ण रूप से समर्पण कर देता है उसका काम बहुत जल्दी बन जाता है। सत्संग में दृष्टा बन कर देखते रहते हैं कि क्या हालत है। अगर हम दुनियाँ के सब काम दृष्टा बन कर देखें तो हम शीघ्र मोक्ष गति को प्राप्त होंगें। जो आत्मा का अनुभव कर लेता है वह अपने को मन या बुद्धि नहीं समझता बल्कि आत्मा (दृष्टा) समझता है। वह दुनियाँ के सारे काम ऐसे देखता है जैसे ड्रामा देख रहा हो

क्योंकि वह अपनी हस्ती को जानता है। यही ज्ञान है। यही ज्ञान यदि पुख़्ता हो जाए तो इसे पूर्ण ज्ञान कहते हैं। यही सारे मजहबों और ध र्मों का सार है। इस तरह बैठ और बिठाल कर जो साधन कराया जाता है उसे संत-मत में सत्संग व सूफियों में हल्का कहते हैं। पहले सब तरह के आदमी सत्संग में आते हैं, फिर वे नियमों में बांधे जाते हैं। (कुछ खास लोगों की ओर मुखातिब होकर गुरुदेव ने फर्माया 'अब मेरा आखिरी वक्त है और तुमको संभालना है इसलिए सख़्ती करनी है। इतने में से अगर एक या दो आदमी भी बन गये तो बहुत काम हो गया।)

यूँ जहां ज़्यादा आदमी होते हैं वहाँ व्यक्तिगत ध्यान नहीं दिया जा सकता। गुरु को मेहनत करनी पड़ती है। सोते वक्त वह अपने शिष्यों को तवज़्ज़ह देता है। इसमें फासले का सवाल नही होता। जो मुरीद जहां है उनको इससे फायदा होता है। सामने बैठाल कर तवज्जह देने से फायदा होता है, लेकिन इस तरह सोते समय जो तवज्जह दी जाती है उससे बहुत फायदा होता है। शमा जल रही है और यह निमंत्रण है, आओ और फिदा हो जाओ। लेकिन दुनियादार दुनियाँ में फँसे हैं। जो उसके फिदाई हैं वे खिंच-खिंच कर चले आते हैं। गुरु प्रेम में मस्त हो जाता है तो शिष्य लोग उसके फैज को छीन लेते हैं। इससे मन का घाट बदलता है। यह हमारे यहां के फैज का तरीका है। बाज लोग सामने बैठ कर असर कबूल नहीं करते, बाज करते हैं। जब तवज़्ज़ह आती है तब मन अन्दर को खिंच जाता है और उस वक्त कोई काम नहीं किया जा सकता है। उस तवज़्ज़ह को धारण (रिसीव) करना चाहिये। इससे फैजयाबी होती है। जमात ज़्यादा होने पर यह नहीं हो सकता। अपने विश्वास से आपको फायदा हो जाये, तो हो जाये मगर गुरु से फैज़ नहीं आता।

हमारे यहां का तरीका प्रेम का है। मुराद या फिदायी को अभ्यास नहीं करना पड़ता। बाकी लोगों को अभ्यास करना पड़ता है। फिदायी को अभ्यास की जरूरत नहीं है। वह गुरु के हुक्म पर ही चलता है।

ये फिदायी पैदायशी होते हैं। फिदाईयत या फनाइयत कमोवेश (न्यूनाधिक) भी होती है। गलत सोसाइटी में बैठने से या वर्जित काम करने से यह कम हो जाती है। हमने जरा सा यह देख लिया कि अगर गुरुदेव ने जरा भी किसी चीज से ध्यान हटा लिया तो फिर उसका ख़्याल भी नहीं आया। गुरु शुरु में आपका मन रखता है और आपके मन जैसी बात कहता है। लेकिन उसे आपके मन को ठीक करना है इसलिए वह आपके मन को तोड़ता है।

अभ्यास क्या है और क्यों कराया जाता है ? अभ्यास इसलिए कराया जाता है कि गुरु से जो चीज मिले उसे पुख़्ता कर लो। अविश्वास इस चीज को दबाती है। कस्ब (कर्मठता) अभ्यास से गुरु से मिली चीज बढ़ती है। अभ्यास का मतलब है कि तुम अपने को तम से रज व रज से सत पर लाओ। गुरु की मोहब्बत से आत्मा को शक्ति मिलती है। अभ्यास से कोशिश करके मन को उस जगह पहुँचा दो जहाँ आत्मा नृत्य कर रही है। मन को नीचे के स्थानों से उस जगह लाना अभ्यास है। हमख़्यालों (सम विचार धारा वाले लोगों) के साथ बैठो। सत्संग में अगर ध्यान न लगे तो ख़्याल करो कि गुरु सामने बैठे हैं और उनसे फैज यानी प्रकाश की धारें निकल रही हैं और आपके दिल व शरीर को प्रकाशित कर रहीं हैं। इससे एक और अच्छी तरकीब ध्यान लगाने की यह है कि सोते समय सिर गुरु के कदमों में रख कर सो जाओ। इस थोड़े से ध्यान से रात भर फायदा होगा। आपने सिर गुरु के कदमों में रखा और गुरु ने आँख खोली और देखा कि आप सिजदे में हैं। इससे वह चीज जिसकी आपको तलाश है बहुत जल्दी आपको हासिल हो जायेगी। दुनियाँ मन को बार–बार नीचे खींचती है लेकिन अगर दुनियाँ के कामों और अभ्यास को साथ–साथ रखोगे तो बहुत जल्दी कामयाबी होगी। सुबह उठ कर आँख पर हाथ रख कर गुरु का ध्यान करने का तरीका बहुत पुराना है। इससे दिन में गुरु का ध्यान बना रहता है।

परमसंत डा.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

उपदेश

❖ किताबों का ज़्यादा पढ़ना बेकार की बातें हैं। पहले सच्चे गुरु की संगति में रहकर दिल की किताब पढ़ लो, उसके बाद किताब से मिलाओ। एक तो सच्चे गुरु का मिलना मुश्किल है, मिल जाय तो लग लिपट कर अपना काम बना लो। व्यर्थ तक्र और विवाद में पड़ कर अपना समय नष्ट मत करो।

❖❖❖❖❖

❖ यहाँ आये हो, सब द्वेष, हिंसा और निन्दा भूल जाने की कोशिश करो। अगर हिंसा और निन्दा ही करनी है तो यहाँ आने का क्या लाभ ?

❖❖❖❖❖

❖ संतों का सत्संग किये बिना आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिन लोगों को असली परमार्थ की चाह है उनको चाहिए कि संत सद्गुरु की खोज करें और अगर वे सौभाग्यवश मिल जायें तो उनकी संगति से लाभ उठाकर अपना काम बना लें, क्योंकि यह रत्न अनमोल है।

❖❖❖❖❖

❖ एक के सिवा कुछ नहीं। नहीं, दो हैं– वह और मैं। दो नहीं, जब वह है तभी तो मैं हूँ। जब वह नहीं, तब फिर मैं कहाँ ? इसलिए वह एक ही है।

❖❖❖❖❖

❖ जो परमात्मा को नहीं पूजते वे गिरेंगे। चाहे कितना भी बुरा आदमी हो, लगन से परमात्मा का नाम लेने वाला बहता नहीं है। दीन

और दुनिया दोनों बना लेता है। दुनिया में कर्म पूरा कर लेता है और दीन भी मिल जाता है। जो किसी पेड़ से रस्से के द्वारा बँधा है वह घूमता भले ही रहे परन्तु गिरता नहीं है। गुरु के प्रेम का, परमात्मा के नाम का रस्सा अपनी कमर में बाँध लो। कितने भी भटको किन्तु रास्ते से हटने नहीं पाओगे।

❖❖❖❖❖

❖ ख़्याल की कमजोरी ही इन्सान का संशय या भ्रम है। यह मोह, अज्ञान और वहम है। इसी को संत सद्गुरु दूर करके जीव को असलियत से परिचित कराते हैं।

❖❖❖❖❖

❖ हरेक मनुष्य का कर्तव्य है कि जब तक जीवित रहे और हाथ पाँव सही रहें तो अन्त तक अपनी रोजी आप कमावे। अगर बूढ़ा है, कोई भारी भरकम काम करने योग्य नहीं है तो हल्का सा काम घर का ही कर ले। जो कमाये वह हक़ हलाल का हो। बच्चे को पढ़ाने या घर की देखभाल का काम ले ले। कहने का मतलब है कि हर आदमी काम करे, हराम की न खाय।

❖❖❖❖❖

❖ हर बात पर मनन करो। उसे पुराने आचार्यों और सन्तों की किताबों से मिलाओ। यदि नहीं मिलती तो समझ लो कि अभी तुम्हारे अनुभव में ग़लती है क्योंकि सद्ग्रन्थ ग़लत नहीं हैं। फिर विचार करो और उसे समझो। अपने अन्तर में घुसो। जब अन्दर सच्चे रूप से घुस जाओगे तब सभी रहस्य खुल जायेंगे।

❖❖❖❖❖

❖ हर चीज़ के बारे में सोचो तो देखोगे कि कोई तुम्हारा नहीं है। न तुम्हारे साथ आया था न जायेगा। यहाँ की कोई चीज़ तुम्हारे

काम नहीं आयेगी। यह सब फँसाने वाली हैं। न मालूम अब तक तुम्हारी कितनी शादियाँ पिछले जन्मों में हुईं, कितने बेटे बेटियाँ हुए, कितने मकान बने मगर तृप्ति नहीं हुई। यह सब तो होता रहा है और आगे भी हो सकता है लेकिन मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलता। इसी योनि में ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, दूसरी में नहीं। इसलिए इसे अमूल्य जानकर इसका उपयोग ईश्वर की प्राप्ति के लिए करो।

❖❖❖❖❖

❖ उन लोगों से जो निपट संसारी हैं और जिनके मन में सिवाय संसार और भोग विलास की बातों के और कुछ नहीं है, दूर रहें। वे ईश्वर से विमुख रहते हैं और जो कोई उनके सम्पक्र में आयेगा उसे भी वे ईश्वर से विमुख कर देंगे। उनकी संगति में बैठने से तुम इधर–उधर की बातें सुनोगे, दुनिया की चीजों और भोगों का हाल सुनकर तुम्हारे चित्त में उनकी याद हरी हो जायेगी। इससे दुःख पैदा होगा और भजन व अभ्यास के समय भी वे याद आकर तुम्हारी साधना में विघ्न डालेंगी।

❖❖❖❖❖

❖ यह अच्छी तरह समझ लो कि जो भी काम करो, अगर उसका फल मालिक की मौज पर छोड़ दोगे तो बन्धन नहीं होगा। कर्म करते हुए अकर्ता हो जाओगे। संचित कर्म धीरे–धीरे कट जायेंगे। आइन्दा (भविष्य) के लिए कर्मभार नहीं चढ़ेगा यानी क्रियमान कर्म नहीं लगेंगे और प्रारब्ध कर्मों का भी ज़ोर कहुत कम हो जायेगा।

❖❖❖❖❖

❖ हर काम का फल ज़रूर मिलता है। अच्छे काम का अच्छा और बुरे काम का बुरा, मगर देने वाला एक ही परमपिता परमेश्वर है।

उससे दुनिया मांगोगे, दुनिया मिलेगी दीन मांगोगे, दीन मिलेगा। उससे उसको मांगोगे उसका प्रेम मिलेगा। मगर हर चीज़ की कीमत देनी पड़ेगी। अगर उस (प्रभु) को पाना चाहते हो तो अपने को ख़त्म कर दो। जीते जी मरना पड़ेगा।

❖❖❖❖❖

❖ अगर तुम्हारे सामने कोई किसी की बुराई करता है तो यह समझ लो कि वह तुम्हारी बुराई किसी और के सामने कर सकता है। यह आदत परमार्थ में बड़ी विघ्न डालती है। दूसरों की ऐबजोई (परदोष दर्शन) पाप है। ऐसा आदमी तरक़्क़ी नहीं कर सकता। बुराई करने की आदत छोड़ो।

❖❖❖❖❖

❖ जिस तरह सन्त बहुत कम हैं उसी तरह अधिकारी भी बहुत कम हैं। जो मनुष्य सन्तों के पास आकर कुछ नहीं चाहता, दुनिया की कोई चीज़ नहीं चाहता, सिर्फ अपने उद्धार के लिए उनकी शरण ग्रहण करता है, ऐसा आदमी अधिकारी है। ऐसे ही लोगों की तरफ़ सन्त राग़िब (आकर्षित) होते हैं। दुनियाँ माँगने वाले बहुत आते हैं। सन्तों को वे राग़िब (आकर्षित) नहीं कर सकते।

❖❖❖❖❖

❖ सन्त दुनियां में इतना तो दे देते हैं कि जिससे पेट भर जाय, जीवन निर्वाह हो जाय। मगर जो उससे ज़्यादा प्रेम करते हैं उनका घर उजाड़ देते हैं कि ग़रूर (अभिमान) चला जाय। ओहदेदार की इज़्ज़त ख़त्म कर देते हैं। उनकी शरण में तो वह आये जो अपनी दुनियां को आग लगा दे। इसलिए सन्त से दुनियां मत माँगो, उतना ही सिर्फ़ माँगो जितने में निर्वाह हो जाय। बाक़ी ईश्वर का प्रेम माँगो।

प्रवचन परमसंत डॉ.करतार सिंहजी साहब

आन्तरिक शान्ति के लिये द्वन्दों को समाप्त करना होगा

गुरु अर्जुन देव जी का शबद पढ़ा गया

अब हम चलीं ठाकुर पै हार,
जब हम शरण प्रभु की आई राख प्रभु भावें मार।

पूज्य गुरुदेव (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) फरमाया करते थे कि परमात्मा ने अपने आप को गुप्त किया, मनुष्य को प्रकट किया तथा उसको अपना जैसा ही बनाया। अब मनुष्य की साधना यह होनी चाहिये कि वह अपने आप को गुम कर दे और अपने भीतर से ईश्वर को व्यक्त करे। ईश्वर की प्राप्ति के लिए सैंकड़ों पद्धतियाँ हैं परन्तु सब का सार यही है कि मनुष्य अपने अहंकार को खत्म कर दे। अहंकार के कारण ही वह अपने आपको परमात्मा से भिन्न समझता है। यह अहंकार ही उसकी खुदी या अहं को खत्म नहीं होने देता।

यह संसार द्वन्दों का, ईष्या का, बदले की भावना का, स्थान है। ऐसे व्यक्ति आपको कम ही दीखेंगे जो फरीद जी की तरह कह सकें कि यदि कोई व्यक्ति आपकी पिटाई करे तो आप उस व्यक्ति के घर जाकर उसके चरण दबाइए। पढ़ा लिखा व्यक्ति इस बात को क्या समझेगा कि जो व्यक्ति हमको दुःख पहुंचाता है हम उसके घर जाकर उसकी सेवा करें। किन्तु जिसको परमात्मा की प्राप्ति करना है उसको यह विशेष व्यवहार करना ही पड़ेगा। उसको अपनी बुद्धि से बदले की भावना, जैसे को तैसा करने की भावना निकालनी ही होगी। उसको दीन बनना पड़ेगा।

गुरु अर्जुन देव जी ने अपनी वाणी में फरमाया है ''अब हम चलीं ठाकुर पै हार'' यानी हमने इस संसार को देख लिया है और उससे ऊब कर अब हम अपने सच्चे पिता परमात्मा की ओर चले हैं। वह हमारे प्रतीक बन कर परमपिता परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं कि हमने इस संसार–यात्रा में देख लिया कि हमें अपने बल बूते, अपनी

शक्ति से, अपनी बुद्धि से, अपने अहंकार से, सफलता यानी भीतर की शान्ति नहीं मिलती। जो व्यक्ति संसार से थकता नहीं है, जिसके हृदय में संसार से उपरामता उत्पन्न नहीं होती, उसकी साधना तो अभी शुरु ही नहीं हुई। इसीलिये गुरुदेव कह रहे हैं ''अब मैं चलीं ठाकुर के द्वार'' यानी हे परमात्मा! मैने इस संसार की असारता को देख लिया, अब मैं ऊब कर, हार कर, आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ। संसार में मेरा कोई नहीं है। न माता–पिता, न पति–पत्नी, न संतान और भी संसार में जितने हैं, उनमें से कोई अपना नहीं है।

साधक के मन में जब वैराग्य उत्पन्न हो जाता है कि मैं किस कीचड़ में फंस गया हूँ तब उसमें परमात्मा को पाने की सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न होती है। जब तक व्यक्ति दीनता को नहीं अपनाता, संसार से उपराम नहीं होता तब तक उसमें समर्पण भाव नहीं आता। तब तक वह शरणागत नहीं होता। यह संसार द्वन्दों का है। एक ओर हमारी खूब उपमा होती है, वो भी हमें कीचड़ में फंसाती है, और दूसरी ओर हमारी बदनामी भी होती है, वो भी दुखदायक है। प्रत्येक मनुष्य इन द्वन्दों में फँसा रहता है।

गीता में भगवान अर्जुन को यही बतलाते हैं कि तू द्वन्दों को छोड़ आत्मस्थित हो। निष्काम भाव से सबकी सेवा यज्ञ समझ कर कर। ये 'यज्ञ' शब्द बड़ा विशेष है। यज्ञ में आहुति दी जाती है। दी गई आहुति वापस नहीं आती, वह अग्नि रूप हो जाती है। इसीलिये भगवान कह रहे हैं कि तू कर्म कर परन्तु कर्म के साथ उसकी आहुति भी उस कर्म–यज्ञ में डाल दे। कोई आशा या इच्छा मत रख। हमें पढ़ने या सुनने में तो यह बड़ा सरल लगता है परन्तु व्यवहार में यह बड़ा कठिन है। हम स्वनिरीक्षण करके देखें कि क्या हमारा कोई भी काम यज्ञ–रूप होता है। जब व्यक्ति संसार की ठोकरें खाकर थक जाता है तब परमात्मा की कृपा से ही ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है, अन्यथा आदमी कितना ही बड़ा हो जाय, वह कीचड़ में ही फँसा रहता है। वह आशा–निराशा, इच्छायें, क्रोध आदि सब में लिप्त रहता है। बुद्धि का, स्मृति का नाश हो जाता है। स्मृति क्या है ? कि मैं तो आत्मा हूँ, परमात्मा का अंश हूँ। ये दुःख–सुःख किसको होता है, ये उत्तेजना किसको मिलती है, संसारी वस्तुएं क्या हैं, इनकी कीमत क्या है ? वह उस समय भूल जाता है कि ये सब असार हैं। फलतः उसकी बुद्धि का नाश होने से उसका परमार्थ

नष्ट हो जाता है। इसीलिये चाणक्य मुनि कहते हैं कि हे परमात्मा! तू मेरा सब कुछ हर ले किन्तु मेरी बुद्धि को मत हरना। यहाँ बुद्धि का मतलब है 'आत्ममय बुद्धि', 'शुद्ध बुद्धि', 'विकार रहित बुद्धि'।

संसार से थकावट किसी को नहीं आती। ईश्वर के प्रति अपने को समर्पण कोई नहीं करना चाहता। केवल वह व्यक्ति जिस पर ईश्वर या किसी महापुरुष की कृपा हो जाती है और जब उस साधक के हृदय में समर्पण की भावना उत्पन्न हो जाती है तो वह संसार से विरक्त होने लगता है। उसके मन में यह प्रश्न उठने लगता है कि मैं यहाँ किस लिए हूँ। सब की स्मृति का विनाश हो चुका है। किसी को याद नहीं कि मेरा कर्त्तव्य क्या है और मैं हूँ कौन? हम सभी अहंकार के पीछे लगे हुए हैं– मैं–तू, मैं–तू। जब व्यक्ति इस संसार से हार जाता है और जब उस पर प्रभु की कृपा होती है, तब वह प्रभु से प्रार्थना करता है कि चाहे तू मुझे इस द्वन्दों की दुनिया में रख पर मेरा यह भाव बनाये रख कि दुःख आते हैं तो वो तेरी प्रसादी है और यदि सुःख आते हैं तो भी वो तेरी प्रसादी है।

यह कह देना आसान नहीं है कि दुःख भी दे तो मैं तेरा हूँ और सुःख दे तो भी मैं तेरा हूँ। जब तक हम इन द्वन्दों से ऊपर नहीं उठेंगें, मुक्त नहीं होंगें तब तक हमें आत्मा की अनुभूति नहीं हो सकती। गुरु महाराज हमारा प्रतीक बन कर ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं कि जैसे आपने द्रोपदी की लाज रखी, उसकी रक्षा की, उसी प्रकार हम भूले–भटके जिज्ञासुओं की भी रक्षा कीजिये। यदि कोई व्यक्ति यह चाहे कि वह अपने बल पर इस संसार रूपी कीचड़ से निकल जाये तो यह असम्भव है। हो सकता है किसी एकाध व्यक्ति, जिसके पिछले जन्म के संस्कार बहुत अच्छे हों और वह आपने आप निकल जाय, अन्यथा यह बहुत ही कठिन है।

भक्ति मार्ग में दीनता एक मुख्य बात है। बिना दीनता के सफलता नहीं मिलती अर्थात हमारा मन भगवान या अपने इष्टदेव के चरणों में नहीं लगता तथा जिस परिस्थिति में भगवान ने हमें रखा है उससे हम सन्तुष्ट नहीं होते। साधारण सी बात भी होती है तो हमारे मन में क्रोध उत्पन्न हो जाता है और बदला लेने की भावना उत्पन्न हो जाती है। ये मानसिक अवस्था हम सब की है। हम कहते हैं कि साधना में आनन्द नहीं आता। आनन्द तभी आयेगा जब हम निर्विकार होंगे,

निर्द्वन्द होंगे निर्विचार होंगे। तब आत्मा रूपी सूर्य उदय होगा, तब आत्मा का सागर तरंगें मारेगा। हमारे भीतर बाहर शान्त होगी, स्थिरता होगी। हम भीतर से राग–द्वेष में फँसे रहेंगे, राग–द्वेष की अग्नि में जलते रहेंगे, तो शान्ति प्राप्त नहीं होंगी। हमारे मन में विचार क्यों उठते हैं ? वे किस बात के प्रतीक हैं ? विचार द्वन्द के ही प्रतीक हैं। जहाँ मन है, भीतर में राग–द्वेष है, वहाँ भीतर में शान्ति कैसे होगी ? आन्तरिक स्थिरता की प्राप्ति के लिए समर्पण करना ही होगा। हमारी जीवन–नौका संसार रूपी सागर में फंसी हुई है और लहरों के थपेड़े खा रही है। हमारे अपने बल बूते से नौका किनारे पर नहीं आ सकती। इसके लिए एक ही साधन हमारे पास है कि हम प्रभु के चरणों में दीनता पूर्वक सच्ची प्रार्थना करें। प्रार्थना तभी सच्ची होती है जब हम जो कुछ गुरु कह रहे हैं उसके अनुसार अपना जीवन बनाने का प्रयास करें। ईश्वर में विश्वास रखिये और इस बात को खूब समझ लीजिये कि जो कुछ वह करता है वो हमारे हित के लिए करता है।

प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि उसके हृदय में शान्ति हो। शान्ति तब तक नहीं आयेगी जब तक भीतर में आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता। चाहे भक्ति का साधन अपनाइए और चाहे ज्ञान का साधन अपनाइये, दीनता को तो अपनाना ही होगा। इस संसार से आसक्ति उसे छोड़नी होगी संत मत में घर छोड़ने के लिए तो नहीं कहते हैं परन्तु यह कहाँ कहते हैं कि इतने चिपक जाओ कि प्रभु को ही भूल जाओ। घर–बार मत छोड़ो मगर घर में रहते हुए कमल पुष्प की तरह रहने का प्रयास करिये।

''ब्रह्मज्ञानी सदा निर्लेप, जैसे जल में कमल अलेप।''

गृहस्थी में कमल पुष्प की तरह रहना है। यदि हमें कमल पुष्प की तरह जीना है तो हमें सब कुछ ईश्वर के चरणों में समर्पण करना होगा और ऐसा करने से पहले दीनता को अपनाना होगा। दीनता का मतलब है कि ऐसा दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि जो कुछ प्रभु करते हैं वह हमारे हित में है। इस साधना में हम गिरेंगे परन्तु घबराना नहीं चाहिये। आज सफल नहीं होंगें तो कल होंगे, आगे होंगे, सफल अवश्य होंगे। परन्तु पूर्ण समर्पण करना होगा।

चित्त को शान्त रखने के लिए, ईश्वर के दरबार में जाने का अधिकारी बनने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने भीतर में शान्ति

रखें। शान्ति तब तक नहीं आ सकती है जब तक अपने भीतर से द्वन्द नहीं खत्म होते, राग–द्वेष नहीं खत्म होते। यह तभी होगा जब हम प्रभु के चरणों में लिपट जायेंगे। तब हमारा रोम–रोम यह कह उठेगा– 'अब हम चलीं ठाकुर पै हार' तब द्रोपदी जैसा समर्पण आ जायेगा– 'अब मुझसे कुछ नहीं होता भगवान, जैसी तेरी मरजी हो वैसे कर'।

गुरु महाराज कहा करते थे कि प्रभु की तरह माया भी बड़ी बलवान है। इससे मुक्ति पाने की, छुटकारा पाने की मनुष्य के पास शक्ति नहीं है। गुरुदेव कहा करते थे कि प्रकृति माँ के साथ बववचमतंजम (सहयोग) करना चाहिये तब वह पिता के पास ले जाती है। जिसको आत्मा का साक्षात्कार करना है, उसको अपने व्यवहार में परिवर्तन लाना ही होगा। दीन, अति दीन बनना होगा। कबीर साहब कहते हैं 'जब तक मैं था हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं, प्रेम गली अति सांकरी, या में दौ न समाएं।' प्रेम में द्वैत नहीं है। भक्ति में द्वैत होती है– स्वामी और सेवक। परन्तु प्रेम में नहीं है, आत्मा में नहीं है, परमात्मा में नहीं हैं। द्वैत कब खत्म होती है– जब व्यक्ति का अहंकार खत्म होता है, जब सच्ची दीनता आती है।

आध्यात्मिकता में दो चीजें होती हैं– दर्शन (philosophy) और विज्ञान। हम सब समझते हैं कि ईश्वर क्या है, आत्मा क्या है ? परन्तु इतना समझ लेना ही काफी नहीं है। हाथ–पांव द्वारा, वाणी द्वारा, विचार द्वारा मेरे कर्म ईश्वर–मय, आत्मा–मय होने चाहिये। यदि नहीं हैं तो मैंने दर्शन (शास्त्र) भी अच्छी तरह नहीं पढ़ा–समझा और उसके अनुसार मैंने अपना जीवन नहीं बनाया। हमारा जीवन हमारी साधना के अनुसार नहीं है। चाहे साधना हम पांच–सात मिनट ही करें परन्तु पांच मिनिट मनन ज़रूर करना चाहिये। महापुरुषों का जीवन, उनकी वाणी का अध्ययन गहराई में जाकर करना चाहिये, उसमें जो प्रेम गंगा, ज्ञान गंगा बह रही है उसमें स्नान करना चाहिये तथा यह सोचना और मनन करना चाहिये कि हमारा जीवन उसके अनुसार है या नहीं। उसमें जहाँ–जहाँ कमी देखें उसे दूर करने का प्रयास करें– यह साधना है। हम अपने गुरुदेव के आदेश के अनुसार अपना जीवन नहीं जीते। हम सारे दिन तो अपने गुरुदेव के उपदेशों के विपरीत चलते हैं और प्रातः या शाम, वह भी कभी–कभी संध्या पर बैठते हैं। आँखें बंद करके

बैठ जायें और ये आशा रखें कि हमें ईश्वर के दर्शन हो जायेंगे, हम उससे तदरूप हो जायेंगे, ऐसा नहीं हो पायेगा। इसीलिये पूज्य गुरु महाराज का आदेश है कि प्रातः जब से उठते हैं और रात को जब सोते हैं तब तक का सारा समय साधना–मय होना चाहिये। ईश्वर की याद बनी रहनी चाहिये। हमें ईश्वर के गुणों की पूजा करनी चाहिये। पूजा का मतलब है कि हम अपने जीवन में, विचार में, व्यवहार में, वाणी में उन गुणों को विकसित करें।

जब तक हमारे भीतर आशायें, इच्छायें और स्वार्थ हैं तब तक ईश्वर की समीपता नहीं होगी। जीवन को यज्ञ–रूप बनाना ही होगा, आहुति देनी ही होगी। तभी जाकर सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति मिलेगी। सच्ची शान्ति, सच्चा आनन्द, सत–चित–आनन्द, ये गुण केवल आत्मा या परमात्मा में ही हैं। आत्मा, परमात्मा, परम शान्ति सब कुछ आपके भीतर में हैं परन्तु इसके ऊपर जो आवरण पड़े हुए हैं उनसे मुक्त होना है। यहीं साधना है। ईश्वर के गुणों को धारण किये बिना यह साधना सिद्ध नहीं होती।

पूज्य गुरु महाराज का उपदेश था कि गुरु पूजा या ईश्वर पूजा यही है कि ईश्वर–गुरु के गुणों को सराहना और उनको अपने जीवन में उतारना। ईश्वर दर्शन यह है कि जो गुण ईश्वर के हैं वे ही हमारे हो जाने चाहिये तब जाकर सच्ची शान्ति, सच्चा सुःख और सच्चा आनन्द मिलेगा। उस आनन्द में स्वार्थ नहीं हैं। जैसे ईश्वर अपना आनन्द सबको बाँट रहे हैं ऐसे ही ईश्वर से तदरूप संत शान्ति, सुःख और शांति का अप्रयास वितरण प्रतिक्षण करता रहता है। ऐसे महापुरुष के पास बैठने से हमारी आत्मा के ऊपर जो आवरण पड़े हुए हैं वो भी उतर जाते हैं।

ऐसे महापुरुष की खोज में हमेशा रहना चाहिये। ईश्वर कृपा से यदि ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाय तो कुछ करने कराने की आवश्यकता नहीं। उनके पास केवल श्रद्धा से बैठना ही काफी है। चाहें उसके समीप बैठें, चाहें कोसों दूर बैठें, उसका ख़्याल करें। लाभ अवश्य होगा। केवल इतना ही करें। हमारे व्यवहार में मधुरता हो। हमारी मधुरता से दूसरों को शान्ति मिलती है, सुःख मिलता है। आप किसी का भला करना चाहते हैं और अहंकार के साथ करें तो लाभ नहीं होगा। अभिमान नहीं आना चाहिये। प्रत्येक कर्म में सावधान रहना चाहिये कि हमसे

किसी का दिल न दुखे। गुरु महाराज कहा करते थे कि अपने जीवन को (रहनी सहनी को) बनाओ। हमारा जीवन साधना के अनुसार नहीं है। हम प्रातः–सांय की साधना को एक अलग वस्तु समझते हैं और सांसारिक व्यवहारों को एक अलहदा वस्तु समझते हैं। ये हमारी भूल है। संस्कार चाहें अच्छे हों या बुरे, जब तक सारे संस्कार, सारी इच्छाएं, सारे अहं खत्म नहीं हो जायेंगे, तब तक आत्मा का साक्षात्कार नहीं होगा।

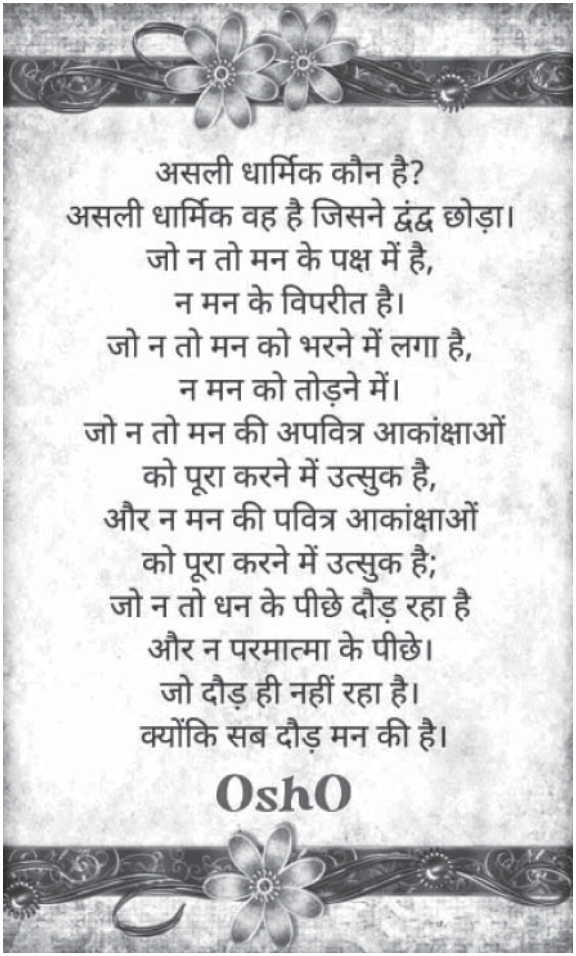

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

मलिक दिनार दमस्की

तपस्वी मलिक दिनार हुसेन बसराई के साथी थे। उनके पिता गुलाम थे तो भी उनका यह भाग्यशाली पुत्र जीवनमुक्त पुरुष हुआ। उन्होने कठोर साधनाओं के द्वारा खूब लाभ उठाया था। वे अतीव सुन्दर और बलशाली थे। वे दमास्करा शहर में रहते थे। उस शहर की मस्जिद में उन्होंने नियमित रूप से कुछ समय साधना की। उस मसजिद को बनाने वाला मनिया नाम का एक व्यक्ति था। उस मस्जिद की मालिकी पाने के लोभ ही से मलिक दिनार वहाँ जाकर व्रत साधना में लगे थे। एक वर्ष तक वह उसी लोभ के मारे मस्जिद में उपासना करते रहे। एक वर्ष बाद मस्जिद से घर लौटते समय उन्हें रास्ते में देववाणी सुनाई दी– ''मलिक, मलिक! यह क्या धर्म कार्य भी एक क्षुद्र लालसा के लिए कर रहा है। देख लौटकर मत जा।'' यह आज्ञा सुनकर वह उल्टे पाँव मस्जिद में लौट आये और विचारने लगे कि ''हाय! यह मैंने क्या किया ? एक वर्ष तक कपट और सकाम भाव से ईश्वर की उपासना करके मैं प्रभु का विश्वास और प्रेम ही भूल गया, तुच्छ लालच में फँस गया। सिर्फ आज ही मैं पवित्र अन्तःकरण से उपासना कर सका हूँ।''

दूसरे दिन प्रातःकाल कुछ उपासक आकर कहने लगे कि इस मस्जिद के लिए एक योग्य उपदेशक की जरूरत है। सबकी नजर मलिक दिनार पर पड़ी और उन्हें मलिक से योग्य कोई दूसरा नहीं दिखाई दिया। सबने उनसे मस्जिद का मुखिया बनने की विनती की। यह सुनकर मलिक ने मन ही मन कहा– ''हे प्रभु! एक वर्ष तक मैं कपट भाव से तेरी उपासना करता रहा, तब तो किसी ने मेरी ओर नजर नहीं उठाई। आज तुझे अपना हृदय अर्पित करते ही, तुझ पर सच्चा विश्वास करते ही तूने इतने लोगों को उसी बात के लिए मेरे पास भेज दिया, तेरी महिमा अपार है। तेरी उसी महिमा

की शपथ खाकर मैं कहता हूँ कि अब मेरे मन में वह लालसा रह ही नहीं गई है।'' वे उसी समय मस्जिद छोड़कर चल दिये तथा और भी अधिक भक्ति–भाव से प्रभु के ध्यान में लग गये।

बसरा में एक धनवान रहता था। एक बेटी छोड़कर वह मर गया। वह कन्या बहुत ही सुन्दर और धर्मपरायण थी। वह कन्या साबेत नाम के अपने एक सम्बन्धी के पास जाकर बोली– ''मेरी मंशा मलिक दिनार की पत्नी होने की है। ऐसे धार्मिक पति को पाकर मैं अपने जीवन को उन्नत बना सकूँगी।''

साबेत नेयह बात मलिक दिनार से कहकर उनसे उस कन्या से विवाह कर लेने की विनती की। मलिक दिनार बोले– ''मैंने इस संसार का त्याग कर दिया है। औरत तो दुनिया की जड़ है, मैं किसी भी तरह शादी नहीं कर सकता।''

मलिक दिनार का एक युवक पड़ोसी बहुत ही पाखण्डी और जुल्मी था। उसके रंग–ढंग देखकर मलिक दिनार बहुत दुःखी होते। एक दिन उस पड़ोसी से परेशान होकर बहुत से लोग अपना दुखड़ा सुनाने उनके पास आये। मलिक दिनार सबके साथ उस युवक के यहाँ गये। उन्होंने उसे बड़ी शान्ति के साथ उपदेश दिया तो भी उस अभिमानी ने धमकाकर कहा– ''मैं ही बादशाह का प्रीतिपात्र हूँ, किसकी ताकत है जो मुझे कोई कुछ कह सके।''

मलिक दिनार बोले– ''हम सब बादशाह से जाकर यह सब हाल कह देंगे।''

युवक– ''चाहे जो कहो। बादशाह तो मेरी बात ही मानेगें।''

मलिक दिनार– ''यदि राजा भी हमारी फरियाद नहीं सुनेगा तो हम राजाओं के राजा उस प्रभु के सामने फरियाद करेंगे।''

युवक– ''वह तो बहुत दयालु हैं।''

मलिक दिनार निराश होकर लौट आये। उस जवान का जुल्म धीरे–धीरे बढ़ने लगा। फिर एक बार बहुत से लोग मलिक दिनार के पास इकठ्ठे होकर

आये और अपनी बुरी हालत सुनाने लगे। वे फिर एक बार उसे समझाने के लिए गये।

जाते समय उन्हें रास्ते में सुनाई दिया– ''अरे दिनार! तुममें से कोई भी मेरे बंधु पर हाथ न उठावे।'' यह सुनकर सब चकित हुये। मलिक दिनार को दूसरी बार आया देखकर वह जवान बोला– ''फिर क्यों चला आया ?''

मलिक दिनार बोले– ''भाई! तुम्हें एक खुशखबर सुनावे। हम लोगों ने देववाणी सुनी है कि तुम प्रभु के सखा हो।''

युवक ने कहा– ''महात्मन्! मुझे भी अपने किये हुये कृत्यों पर बहुत पछतावा है। कल से मेरा मन बदल गया है। जो कुछ मेरे पास है उसे मैं प्रभु के नाम पर छोड़ देता हूँ।'' इतना कहकर उसने अपना धन गरीबों में बाँट दिया और प्रभु का मार्ग पकड़ लिया।

इसके बाद उसे किसी ने नहीं देखा। मलिक दिनार ने बहुत दिनों के बाद उसे मक्का में अंतिम स्थिति में देखा। वह तृण के समान विनयी देह से दुर्बल हो गया था। मौत के किनारे बैठा वह कह रहा था– ''अहा प्रभु! मुझे अपना बन्धु बता रहे हैं, मैं उसी बन्धु के पास जाऊँगा, जिससे मेरे बन्धु को संतोष हो, वही मेरी इच्छा है। मेरे बन्धु को तो संतोष होगा उसकी सच्ची भक्ति से। अपने कृत्यों के लिये मैं पछता रहा हूँ, अब फिर कभी गुनाह नहीं करूँगा।'' इतना कहकर उसने शरीर छोड़ दिया।

मलिक दिनार भाड़े के मकान में रहते थे। एक यहूदी उनका पड़ोसी था। उनके दरवाजे के सहारे यहूदी ने पखाना बनवाया, जिससे आते जाते उन्हें दुर्गंध आती। यहूदी भी ऐसा था कि कई दिनों में पाखाना साफ करवाता। मलिक दिनार कष्ट सहते रहे पर उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा। आखिर एक दिन खुद यहूदी ने इसका जिक्र किया– ''आपको मेरे पाखाने के कारण कोई कष्ट तो नहीं होता ? उसे देखकर आपको क्रोध तो नहीं आता ?''

उन्होंने उत्तर दिया– ''तकलीफ क्या होती ? नाक बंद करके निकल जाता हूँ। क्रोध क्यों करता भाई। प्रभु की आज्ञा है कि मेरा भक्त क्रोध कभी न करे।''

यहूदी उनकी ऐसी विनम्रता और प्रभु–परायणता देखकर अपने किये पर पछताने लगा। माफी मांग का उसने उनसे धर्म की दीक्षा ली।

मलिक दिनार कई वर्षों से केवल सूखी रोटी खाते थे। शाम को बाजार से रोटी ले आते और उसे खा कर पानी पी लेते। उससे उनकी तन्दुरस्ती बहुत ठीक रहती। देवयोग से वे एक बार बीमार हुए। बीमारी में उन्हें मिठाई खाने का शौक हुआ। बहुत अधिक रोकने पर भी जब मन न माना तो वे दुकानदार से सामान खरीद लाये। रोज सूखी रोटी खरीदने वाले आज इस सामान का क्या करेंगे, यह जानने के लिए कौतूहलवश दुकानदार ने एक आदमी उनके पीछे लगा दिया। थोड़ी दूर जाने पर मलिक दिनार ने उस सामान को देखते हुए अपने आप से कहा– ''अरे मेरे मन! तेरे लिए इतना भोग ही बस है, और आगे नहीं।'' वह सामान एक गरीब को देकर उन्होंने फिर कहा– ''अरे मेरे दुर्बल मन! नियमों से बाँधकर मैं तुम्हें तकलीफ जरूर देता हूँ पर बैरभाव से नहीं, मित्रभाव से ही। धैर्य धर एक दिन तेरे इस दुःख का अंत ज़रूर आयेगा और तुझे ऐसा सुख मिलेगा जिसका अन्त न होगा।'' कुछ देर बाद वे बोले– ''लोग कहते हैं लगातार चालीस दिन तक पौष्टिक आहार न खाने से आदमी की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मैंने तो बीस वर्ष एक बार भी वैसी कोई चीज नहीं खायी, फिर भी मेरी बुद्धि तो सुधरती ही मालूम देती है।

मलिक दिनार चालीस वर्ष तक बसरा में रहे। परन्तु उन्होंने एक बार भी खजूर नहीं खाया। खजूर का मौसम आने पर वे कहते– ''देखो खजूर न खाने से मेरे शरीर को कोई नुकसान नहीं हुआ और बराबर खजूर खाते रहने से तुम्हारे शरीर का कोई फायदा नहीं हुआ।'' चालीस वर्ष के बाद एक दिन उन्हें खजूर खाने की प्रबल इच्छा हुई तो उन्होंने कहा– ''अरे लोभी मन! निश्चय जान मैं तेरी वासना कभी पूरी न करूँगा।''

एक रात उन्होंने सपने में देखा कि कोई उनसे आग्रह कर रहा है कि– ''तपस्वी दिनार! खजूर खा लो, मन को और ज़्यादा तकलीफ न दो।'' इस सपने से तो उनका मन और भी ज़्यादा ललचाया तो उन्होंने कहा–

''अरे मन! सात दिन तक रोजा और उपासना करेगा तो तेरी इच्छा पूरी करूँगा।'' इस प्रकार सात दिन तक रोजा और उपासना की समाप्ति पर खजूर खरीदकर खाने के लिए वे मस्जिद में गये। उन्हें देखकर एक बालक ने अपने पिता को पुकार कर कहा–''देखो, देखो! एक यहूदी मस्जिद में बैठकर खजूर खाने जा रहा है।''

पिता ने जवाब दिया– ''यहूदी का मसजिद में जाने से मतलब?'' इतना कहकर वह यहूदी को मसजिद से निकालने के लिए लकड़ी ले कर आया। परन्तु सामने मलिक दिनार को देखकर उसने माफी माँगते हुए कहा– ''महात्मन्! कसूर माफ हो। हमारे यहाँ यहूदी के सिवा दिन में कोई नहीं खाता। सभी रोजा रखते हैं। बालक ने आपको पहचाना नहीं, बिना जाने आपको यहूदी बता दिया।''

सुनते ही मलिक दिनार पछताने लगे। उन्होंने बालक की वाणी में प्रभु की प्रेरणा देखी, वे बोले– ''हे प्रभु! खजूर चखा भी नहीं कि तूने मुझे बालक के मुँह से यहूदी बताया, खजूर खा लेता तो मुझे नास्तिक कहलाना पड़ता। हे प्रभु मैं सौगन्ध खाता हूँ कभी खजूर न खाऊँगा।''

एक दिन बसरा शहर में आग लगी। मलिक दिनार घर की छत पर घूमते हुए इधर–उधर देख रहे थे। लोग अपना–अपना सामान बाहर घसीट रहे थे। उन्हें देखकर वे बाले– ''जिसका भार कम है वही इस समय निश्चिन्त है, जिसके पास ज़्यादा सामान है वही चिन्तित है। उसी का नुकसान भी होगा। अहो! परलोक प्रयाण के बारे में भी ठीक यही बात है।''

जाफर ने एक बार मलिक दिनार के दर्शन मक्का में किये थे। ''लब्बेक'' यानी तुम्हारी शरण में आया हूँ, यह कहते ही मलिक मूर्छित हो गये। मूर्छा भंग होने पर उन्होंने बताया कि वे इस डर से मूर्छित हो गये थे कि कहीं उनकी बात के जवाब में खुदा यह न कह दे कि तू मेरे पास न आ।

एक स्त्री ने एक दिन दिनार को 'कपटी' कहकर पुकारा। वे झट बोले– ''बहुत ठीक! बीस वर्ष तक किसी ने मुझे मेरे सच्चे नाम से नहीं पुकारा, आज तूने मेरे सच्चे नाम से पुकारा। बहुत ठीक पहचाना बहन तूने।''

महर्षि दिनार तपस्वी हुसेन बसराई के समकालीन थे, इसलिए उन्हें हुए भी बारह सौ वर्ष बीत गये।

उपदेश वचन

1. मैं कौन हूँ, ईश्वर का दिया खानेवाला और शैतान का हुक्म बजानेवाला।
2. इस मस्जिद से सबसे बड़े पापी को बाहर निकालने के लिए कहा जाए तो मैं ही सबसे पहले निकलूँगा।
3. इस दुनिया में लोगों की दोस्ती बाहर से देखने में सुन्दर और अन्दर से जहरीली होती है।
4. मायावी संसार से सदा सचेत रहना, यह बड़े-बड़े पण्डितों के मन को भी वश में कर लेता है।
5. जिन्हें ईश्वर की स्तुति और ईश्वर का स्मरण करने के बदले लोगों को शास्त्र के वचन सुनाना ही अच्छा लगता है, प्रायः उन सबका ज्ञान ऊपरी है, जीवन सारहीन है।
6. महामुक्त प्रभु तुम्हारी अखण्ड सेवा करता है, तुम भी उसकी अखण्ड सेवा करके मुक्त बनो।
7. ईश्वर ने कहा है कि मैं तुम्हें अपनी ओर अनुरागी होने को कहता हूँ, पर तुम अनुराग नहीं दिखाते। मैं संगीत करता पर तुम नाचते नहीं।
8. ईश्वर ने कहा है- हे सत्यनिष्ठ जनो! संसार में गुणगान करके संपत्तिवान बनो। मेरा गुणगान इस लोक में संपत्तिदायक और परलोक में भी लाभदायक है।
9. ईश्वर ने कहा है- जो ज्ञानी संसार पर प्रेम रखता है उसके हृदय में से मैं ईश्वर-स्तवन और उसके गुणगान में से मिठास हर लेता हूँ।

ध्यान का विज्ञान

यह स्वाभाविक है कि निष्ठापूर्वक लम्बे समय तक ध्यानाभ्यास करने वाले लोग अपनी प्रगति का अंकन करना चाहेंगे। सिंहावलोकन करने पर बहुतों को यह लगता है कि बहुत वर्षों तक अभ्यास करने पर भी वे लक्ष्य की ओर अधिक नहीं बढ़ पाये हैं। और स्वाभाविक ही वे निराश हो जाते हैं। वे पूछते हैं, ''मैंने अधिक प्रगति क्यों नहीं की ? क्या मैं सही मार्ग का अनुसरण कर रहा था ?'' वस्तुस्थिति का निष्पक्ष विश्लेषण न कर पाने के कारण कुछ लोग यह कह कर कि, ''मैं ध्यान का अधिकारी नहीं हूँ, वह मेरे लिए नहीं है'', आध्यात्मिक साधना का त्याग कर देते हैं।

यह कोई साधारण परिस्थिति नहीं है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं से पूछना चाहिए, ''मैंने गलती कहाँ की ?'' हमारे आध्यात्मिक जीवन की प्रारम्भिक तैयारी में कुछ बारीक गलतियाँ हो सकती हैं। सम्भवतः हम, ''मैं दूसरों से अधिक आध्यात्मिक हूँ'', इस तरह की भावना जैसी कुछ भ्रान्तियों से ग्रसित हों अथवा सम्भवतः कोई दीघ्र कालीन गहरी आदत या प्रवृत्ति, जिसे हम सोचते हों कि हमने पूरी तरह जीत लिया है, अभी भी विद्यमान हो। बद्धमूल प्रवृत्तियों को दूर करना कठिन होता है। वे झाड़–झंखाड़ की तरह होती हैं। अगर बगीचे की कुछ दिनों तक देखभाल न करो तो वे अपने आप उग आते हैं। उनको उगाना नहीं पड़ता।

लेकिन हमें निराश नहीं होना चाहिए। हमें शान्तिपूर्वक विषय पर विचार करना चाहिए और जहाँ कहीं भी प्रमाद उपस्थित हो, उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। आध्यात्मिक साधना भी एक प्राणहीन ढर्रे में परिणत हो सकती है। ''मैंने कुछ प्रगति की है और अब मैं पूर्ण सुरक्षित हूँ। मैंने महापुरुषों के भवन में प्रवेश कर लिया है और अब विश्राम कर सकता हूँ''– ऐसा सोचना बहुत आसान है। सावधान! शैतान इसी क्षण की प्रतिक्षा में रहता है। वे सारे गहरे संस्कार अभी भी विद्यमान हैं। उनकी उपस्थिति के प्रति सजग होकर सावधानीपूर्वक आचरण करना चाहिए।

एक बार परिस्थिति को हृदयंगम करके समस्याओं को दूर करने के प्रयास के लिए हमें तत्पर हो जाना चाहिए। हम जैसे अधिकांश सामान्य

श्रेणी के साधकों के लिए बाधाएँ वस्तुतः बहुत बड़ी नहीं है। लेकिन महापुरुषों की बाधाएँ कहीं अधिक बड़ी होती हैं। ईसा मसीह को दिया गया प्रलोभन तथा बुद्ध के समक्ष उपस्थित होने वाला प्रलोभन सचमुच बहुत विराट थे। हमारे लिए ऐसे बड़े प्रलोभनों की आवश्यकता नहीं है। छोटे–मोटे प्रलोभन ही हमें पथभ्रष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। बधाएँ भले ही बड़ी न हों पर उन्हें पहचानना तथा उनका सामना करने की विधि जानना हमारे लिए आवश्यक है।

इन समस्याओं के समाधान के सबसे सक्षम उपायों में से एक अपने इष्ट के प्रति समर्पण तथा उनकी सहायता की याचना करना है। साधना में लगे लोग समान्यतः श्रद्धालु होते हैं, अतः उनके लिए भगवान को पकड़े रहना तथा उन पर निर्भर रहना बहुत सहायक होता है। और एक बार भगवान की शरण लेने के बाद हमें अपनी साधना तथा कर्तव्यों का पालन यथासाध्य करते जाना चाहिए। सारांश यह है कि हमें भगवत्–स्मरण, ध्यान और भगवन्नाम के जप के नियम का यथावत पालन करते रहना चाहिए। ऐसा करने पर हम सभी बाधाओं को पार कर सकते हैं तथा अपने अन्तर से ही आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

अतः यदि हम किसी साधना–पद्धति का अनुसरण कर रहे हों तो हमें अपने आप के प्रति ईमानदार होना चाहिए तथा मन ही मन अपनी दुर्बलताओं और अपने सबल पक्षों का अंकन करना चाहिए। सत्य तो यह है कि चूँकि दुर्बलताएँ भी हैं और एक सांकल उतनी ही मजबूत होती है जितनी उसकी दुर्बलतम कड़ी। अतः यदि हममें कोई बुरी आदतें हों तो हमें उसकी जानकारी होनी चाहिए तथा उसे दूर करने का उपाय करना चाहिए। हममें से कई लोग आध्यात्मिक प्रगति में बाधक अपनी दुर्बलताओं को पहचान नहीं पाते।

भारतीय साधन परम्परा में आन्तरिक शत्रुओं का उल्लेख है। इनमें काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और ईर्ष्या मुख्य हैं। ये सब बाहर नहीं हैं, हमारे अन्दर ही हैं। हमें प्रमाद पर भी नज़र रखना चाहिए क्योंकि अपनी दुर्बलता के लिए सफाई देना बड़ा आसान है। इसके बाद है, संशय। जब किसी वस्तु की प्राप्ति कठिन होती है तो हम उसकी प्राप्ति की सम्भावना में शंका करने लगते हैं।

कभी–कभी हममें उत्साह का अभाव हो जाता है। उत्साह एक अतिरिक्त दाहिने हाथ के समान है। अतः जब उत्साह की कमी होती है तब छोटे–मोटे काम भी कठिन लगने लगते हैं। इन्द्रियविषयों के प्रति आसक्ति भी अति सूक्ष्म बाधा है। हममें से अधिकांश लोग इन्हें महत्व नहीं देते और अपने आप से यही कहते हैं कि ये आदतें हानिकारक नहीं हैं। इन्हें मामूली और निरापद आदतें मानते हैं। लेकिन बहुत सी तथाकथित निरापद आदतें मिलकर काफी हानि पहुँचा सकती हैं।

ध्यान साधना में प्राणायाम बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यदि हम स्थिर होकर और सुखकर आसन में न बैठ सकें और श्वास–प्रश्वास को नियंत्रित नहीं कर सकें तो हमें तनाव शून्यता का अनुभव नहीं होगा और ये एक निश्चित बाधा बन जायेगी। श्वास–प्रश्वास प्राण के विद्यमानता का द्योतक मात्र है। प्राण को जीवन शक्ति और प्राणायाम को देहस्थित जीवनी शक्तियों का नियमन कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि क्रोध में हमारी श्वास चंचल हो उठती है और इसके विपरीत जब हम शांत होते हैं तो हमारी श्वास–प्रश्वास भी सम होती है। अतः श्वास का विधिपूर्वक नियमन आवश्यक है और श्वास–प्रश्वास की कुछ क्रियायें निसन्देह हमारे ध्यान में सहायक हो सकती हैं।

हमें सामान्य दैनिक जीवन की कुछ बातों पर भी ध्यान देना चाहिए जैसे पूर्वाग्रह, असहिष्णुता, जिद्दी भाव, हठधर्मिता, कुसंग आदि भले ही सामान्य समस्यायें प्रतीत हों लेकिन वस्तुतः इनकी जड़ें बहुत गहरी होती हैं। सज्जन लोगों का संग तथा उनके साथ जुड़े सद्गुण आध्यात्मिक जीवन में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। उनका संग करने से हमें संसार के प्रति अनासक्ति पैदा होती है और साथ ही सत्संग में शुभ और कल्याण ाकर विचार उठते हैं जो हमें सही दिशा में परिचालित करने में सहायक होते हैं। उदाहराणार्थ जैसे मोटरकार चलाते समय हमारी प्रगति मार्ग पर संकेतों का अनुकरण करने पर निर्भर करती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में भी सज्जनों का संग खोजना चाहिए जो हमारे चरम लक्ष्य की दिशा में सांकेतिक चिन्हों का काम कर सकें।

नाम यश की आकांशा एक अत्यंत सूक्ष्म प्रलोभन है। यदि हमें किसी विशेष विषय का विशिष्ट ज्ञान हो तो हम अहंकारी हो जाते हैं और यह

अनिवार्य रूप से दूसरों के प्रति हमारे व्यवहार में प्रगट होता है। वार्तालाप के दौरान दिखावा करना आसान है लेकिन जब दूसरे हमारी उपलब्धियों को स्वीकार नहीं करते या प्रशन्सा नहीं करते तो हमें बुरा लगता है। इससे हमारे अहंकार को ठेस लगती है। ये एक बड़ा खतरा है जिससे हमें सावध ाान रहना चाहिए। हमें विनम्रता का अभ्यास करना चाहिए और दूसरों के प्रति अपने सम्बन्ध में प्रेम की अभिव्यक्ति करना सीखना चाहिए। यह बहुत उपयोगी है और हमारे चरित्र निर्माण में निश्चित रूप से सहायक होगा।

हमारे व्यक्तित्व का निर्माण हमारे विचारों से होता है। विचारों का क्षेत्र आंतरिक गतिविधि का क्षेत्र है और हमारे चरित्र निर्माण का आधार भी है। ''एक विचार बोओ, एक कार्य उगाओ, एक कार्य बोओ, एक आदत बनाओ, आदत बोओ चरित्र निर्मित होगा, चरित्र बोओ, भविष्य बनाओ''। जब कुछ अशुभ घटता है तो हम कहते हैं, ''ओह! ये मेरे भाग्य के कारण है''। लेकिन वस्तुतः यह हमारी आदतों का परिणाम है, एक बार आदत बन जाने पर पुनः मिटाना कठिन होता है, इसलिए शुरु से ही अच्छी आदतें डालना चाहिए ताकि हमारे विचारों के अनुरूप ही हमारा गठन हो।

हर रोज किसी सद्ग्रन्थ से कुछ पन्नों का पाठ करने की आदत बना लेना भी आध्यात्मिक जीवन में बड़ा लाभकर है। यदि सद्ग्रन्थ का अध्ययन ठीक से किया जाये तो यह सचमुच एक आध्यात्मिक साधना बन जायेगा। हमें पूछना चाहिए अपने आप से ''क्या हम मुद्रित शब्दों में निहित उपदेश को आत्मसात करने के लिए पर्याप्त एकाग्रता से पढ़ रहें हैं ?'' यदि हाँ तो उससे हममें कुछ परिवर्तन आना चाहिए। इसलिए हमें अपने अध्ययन की सामग्री का बड़े सावधानी से चयन करना चाहिये। प्रतिदिन प्रातः और सायं ऐसी किसी पुस्तक के कुछ पृष्ठों को पढ़ने की आदत बना लेनी चाहिए। और कभी हमारा मूड ऐसा करने का न हो तब भी हमें इस नियम को भंग नहीं करना चाहिए। भक्ति संगीत सुनना भी उपयोगी है। हमें खुले मन से इन बातों पर विचारों करना चाहिए ताकि हम दूसरों के दृष्टिकोण को समझ सकें और उनका आदर कर सकें। यदि हमसे कोई गलती हो तो हमें मानव स्वभाव की दुर्बलता समझकर उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। हम अपनी गलतियों से शिक्षा ग्रहण कर सकते

हैं जिससे हम उन्हें न दोहरायें।

जीवन की आध्यात्मिक रूपरेखा में किसी प्रकार के मतभेद या विवाद को स्थान नहीं देना चाहिए, इससे अशांति होती है। तक्र–वितक्र दो प्रकार के होते हैं। 1. जो स्पष्टीकरण तथा विषयवस्तु को हृदयंगम करने के लिए किये जायें, 2.वह जो अपने मत के दम्भयुक्त प्रदर्शन के लिए हों। साधक को व्यर्थ के वादविवाद में नहीं पड़ना चाहिए। तक्र–वितक्र में पड़ने से एक प्रकार का मानसिक विक्षोभ होता है। वस्तु विषय समझने के लिए विचार विमर्श तथा प्रश्न पूछना उचित है लेकिन अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए प्रयत्न से केवल मनोमालिन्य ही होता है।

विश्वास आध्यात्मिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। लेकिन विश्वास का अर्थ शंका समाधान के बिना किसी बात को स्वीकार करना नहीं है। वस्तुतः हमें तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है– 1.शंका, 2. प्रश्न या जिज्ञासा 3. उसका समाधान और स्वीकृति। उदाहरण के लिए यदि हमें कोई बात कही जाये तो बिना समझे हम उसे स्वीकार करने में हिचकिचायेंगे। लेकिन यदि हम उनके अर्थ को जानने के लिए अन्वेषण करे, उसको समझें और तब स्वीकार करें तो यह विश्वास सच्चा विश्वास होगा। शास्त्रों के उपदेशों तथा गुरु के वाक्यों का विश्लेषण कर उन्हें हृदयंगम करना तथा उनमें निहित सत्य को खोज निकालना हम पर निर्भर करता है। एक बार उसकी प्रप्ति होने के बाद हमें वास्तविक स्थिरता प्राप्त होती है, और तब हम विचलित नहीं होंगे। अगर कोई विरोध और तक्र करके हमारी बौद्धिक मान्यता को डिगाना चाहे तो उससे कोई हानि नहीं होगी। अनावश्यक तर्कों से हमारा कोई सरोकार नहीं होना चाहिए और इसलिए हमारी श्रद्धा प्रश्नोत्तर की दृढ़ नींव पर निर्मित होनी चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जिज्ञासा का अर्थ असम्बद्ध प्रश्न करना नहीं है।

एक बार जिज्ञासु नरेन्द्र ने श्रीरामकृष्ण से प्रश्न किया था, ''यदि आप सचमुच सत्य के ज्ञाता हैं तो क्या आप उसका प्रमाण देंगे ?'' एक अन्य अवसर पर श्रीरामकृष्ण ने अपनी एक अनुभूति उसे बताई तो नरेन्द्र ने उस पर अविश्वास प्रकट किया, इस पर श्रीरामकृष्ण ने जगदम्बा से प्रार्थना की, ''नरेन्द्र कहता है कि मुझमें थोड़ा सा पागलपन है। क्या यह मेरा दर्शन कल्पनामात्र है ?'' इसके बाद वे लौटकर नरेन्द्र के पास आये और कहा,

''माँ जगदम्बा ने मुझे चिन्ता न करने को कहा है। मैं तेरी बात पर विश्वास नहीं करता।'' यह जगदम्बा की सत्ता में उनके विश्वास का सटीक दृष्टान्त है। लेकिन उस सत्य में प्रतिष्ठित होने में रामकृष्ण को समय लगा था। बहुत से आगन्तुक अत्यन्त बुद्धिमान थे और वे प्रायः ऐसी बातें कहा करते थे जिनसे उनके मन में संशय पैदा होता था। उन्होंने औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी तथा उन्हें किताबी ज्ञान नहीं था। लेकिन जगदम्बा से प्रार्थना उनके लिए पर्याप्त था। ऐसे विश्वास को डिगाना किसी के लिए सम्भव हो ही नहीं सकता और यदि हम अपने आध्यात्मिक जीवन में उसके कुछ अंश का भी समावेश कर सकें तो हमारी अधिकांश बाधाएँ दूर हो जायेंगी।

अत्यधिक किताबी ज्ञान या शास्त्रीय ज्ञान भी एक और बाधा है। हम जानकारी एकत्र करते हैं और नाना वस्तुओं का इतना ज्ञान अर्जित कर लेते हैं कि हमारी तात्कालिक आवश्यकता ही छिप जाती है। कुछ विचारों को पुस्तकों से सीख लेना तथा दूसरों को समझाना पर्याप्त नहीं है। इससे कुछ सन्तोष और सुख भले ही प्राप्त पर उससे जीवन में गहराई नहीं आती। समस्त ज्ञान के उत्स परमात्मा का ध्यान, नियमित रूप से किया गया मनन और निदिध्यासन, तथा आध्यात्मिक साधना, पुस्तकी ज्ञान से कहीं अधिक श्रेष्ठतर अर्न्तदृष्टि प्रदान करते हैं। हमें दिन का प्रारम्भ ध्यान से तथा अंत भी ध्यान से करना चाहिए। इससे जीवन की समस्याओं का सामग्रिक रूप से सामना करने के लिए शक्ति प्राप्त होती है तथा बाधाओं को दूर करने में सहायता मिलती है।

वाणी मानव के लिए सबसे बड़ा वरदान है। व्यक्ति प्रायः बोलता पहले है और सोचता बाद में है। यही खतरा है। भगवान की अद्‌भुत देन वाणी का संयत प्रयोग करना चाहिए। बिना विचारे बोलने के बदले चुप रहना श्रेयस्कर है। मौन सचमुच स्वर्णिम है। शब्दाभिव्यक्ति के क्षेत्र में अहंकार की इतनी अधिक कामना हो सकती है कि वह समस्या पैदा कर दे। अतः हमें बोलने में सावधान होना चाहिए।

यदि हम आध्यात्मिक पथ का अन्वेक्षण कर रहे हैं तथा हमें ईश्वर में विश्वास है तो चिंता और संशय का कोई स्थान नहीं हो सकता। ईश्वर ही हमारे जीवन के आधार हैं।

कुछ लोग कठिनाईयों और विपत्तियों के फलस्वरूप आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ते हैं। यदि हम इस प्रकार ईश्वर की ओर हृदयहीनता पुर्वक मुड़ेंगे तो हम देखेंगे की निराशा का भाव हमारा पीछा नहीं छोड़ेगा। हमें ईश्वर को तथा सत्य को जानने की इच्छा से आध्यात्मिक पथ अंगीकार करना चाहिए।

अन्त में हमें समझ लेना चाहिए कि आध्यात्मिक जीवन अंगीकार करने का अर्थ है प्रवाह के विपरीत दिशा में तैरना। हमारे आसपास का सारा संसार एक दिशा में बहा जा रहा है और हमने दूसरी दिशा में जाने का निश्चय किया है। भले ही हमने संसार से भिन्य मूल्यों का चयन किया हो लेकिन हम देखेंगे कि यदि हम थोड़ी सी भी ढील दें तो हम पुनः उसी दिशा में बहने लगेंगे जिसमें संसार बह रहा है। अतः हमें प्रयास करते रहना चाहिए। ''सतत सर्तकता स्वाधीनता की कीमत है।'' और कोई भी विकर्षण अथवा बाह्य खिचाव आध्यात्मिक प्रगति में सहज ही बाधक बन सकता है। आध्यात्मिक जीवन में हमें आशावादी होना चाहिए। यदि हम आध्यात्मिक पथ को स्वीकार करें तो हमें सत्य के साक्षात्कार का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए। यदि कोई गलती हो जाए तो उसे सुधार कर अपने निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर होते रहना चाहिए।

यदि हम यह दृष्टिकोण अपनायेंगे तो धीरे–धीरे सभी बातें ठीक हो जायेंगी और यदि हमें अपने गन्तव्य का ज्ञान हो तो हम कठिनाईयों को दूर करना भी सीख लेते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन एक स्वतंत्र, आशावादी, आनन्दप्रद खोज तथा जीवन के सभी पक्षों में हमें प्ररित करने वाली मुख्य प्रेरणा बन सकता है। संसार के बीच रहते हुए भी हमें जीवन के वास्तविक अर्थ के अनुसंधान का प्रयत्न करना चाहिए।

(श्रीरामकृष्ण–विवेकानन्द साहित्य की पुस्तक 'ध्यान' से लिया गया

स्वामी भव्यानन्द का उपदेश)

हर कोई कहता हैं की ईश्वर नजर नहीं आता लेकिन सच तो यह है की संकट के समय कोई साथ नहीं देता तब किसी न किसी रूप में भगवान् ही साथ देता है।

आगामी भण्डारों की सूचना

eb' 2018 dk HkaMkjk] cDlj

परमपूज्य गुरुदेव की असीम कृपा से मई 2018 का भंडारा बक्सर (बिहार) में होना सुनिश्चित हुआ है।

कार्यक्रम : दिनांक 18–20 मई 2018

सत्संग स्थल : नगर भवन स्टेशन रोड, बक्सर, बिहार

नोट– सत्संग स्थल नगर भवन रेलवे स्टेशन बक्सर में मुख्य मार्ग पर आधा कि. मी. की दूरी पर अवस्थित है। नया बस स्टैण्ड से भी इसकी दूरी करीब आधा कि. मी. है।

सम्पक्र सूत्र

1 प्यारे मोहन श्रीवास्तव – 9430927945, 7250292353
2 श्री दिग्विजय कुमार उर्फ राजन जी – 9771401686
3 एस. पी. सिन्हा – 8507778899, 9431849174

x# if.kek lRlax 2018

कार्यक्रम : 27–28 जुलाई 2018

सत्संग स्थान : अग्रवाल सेवा संस्थान, मुगलसराय

सम्पक्र सूत्र–

1 शिवजी प्रसाद श्रीवास्तव – 9889296601, 9708426414
2 श्री घनश्याम शर्मा – 9335649536
3 श्री दिनेश शर्मा – 9452509148

नोट– सत्संग स्थल मुगलसराय स्टेशन से आधा किलोमीटर की दूरी पर जी. टी. रोड पर मु. थाना से आगे स्थित है।

उपरोक्त समागमों में सत्संग लाभ हेतु आप सभी सादर आमंत्रित हैं। सभी आदरणीय सेन्टर इन्चार्ज से आग्रह है कि सत्संग में भाग लेने वाले भाई-बहनों की संख्या तथा पहुँचने की तिथि व समय उपरोक्त व्यक्तियों को उपलब्ध कराने की कृपा करें।

मंत्री
रामाश्रम सत्संग

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद–201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301